अध्याय - 4

कविता का वैचारिक विमर्श एवं भारतीय स्त्रीत्व की स्थापना

अध्याय-चार

4.0. कविता का वैचारिक विमर्श एवं भारतीय स्त्रीत्व की स्थापना

4.1. जागरणमूलक आधुनिकता का आरंभ

जागरणमूलक आधुनिकता इंसानी सचेतना तथा मानसिक उत्कर्ष को भी रेखांकित करती है। कविता की प्रवाहमयता, जुबानी सुविधा के अनुकूल होती थी, जिसे छंद ने सुरक्षित कर रखा था। छन्दबन्धन खोलने के समय से लेकर कविता में लयात्मकता पर ध्यान मिला। पहले जहाँ कठिन शब्दों का प्रयोग नगण्य था, यहाँ पर आकर उस परंपरा से कविता ने अपने को अलग किया। छन्दबद्ध कविताओं से इस तरह अलग होनेवाले कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला है, जिनकी कविता 'जुही की कली' पर स्वतंत्र चिंता की दृष्टि डाली जा सकती है। यद्यपि कविता प्रेम संवेदना से युक्त है, तथापि वह नायिका केन्द्रित कविता भी है। मिलन, संयोग तथा आपसी संबद्धता की दृष्टि से जुही की कली की खूब चर्चा हुई। यह भूलना नहीं चाहिए कि यह कविता अपनी स्वतंत्र चेतना के कारण परंपरा पोषक संपादकों से लौटा दी गयी थी।

कविता में चिंतन मनन का प्रभाव आधुनिक युग की देन है। आध्यात्मिक चिंतन के माहिर भक्त कवियों ने मध्यकाल में कविता से बढ़कर जग चिंतन के लिए काव्य किया था। पर उनका यह कार्य नवयुगीन जागरूकता के आगे नहीं ठहरता है। आधुनिकता कई अर्थों में भौगोलिक सीमाओं को तोडकर विन्यास्त स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता की चेतना है। काव्य प्रसंग में भी यह चेतना हर भाषा साहित्य को आलोडित करती नज़र आती है।

क्रांतिकारी चेतना का स्वागत करने के लिए निराला ने 'जागो फिर एक बार', 'बादलराग' आदि कविताओं का सृजन किया। इनका असर व्यापक रहा था।

''उगे अरुणाचल में रवि
आई रति कवि कंठ में
क्षण क्षण में परिवर्तित
होते रहे प्रकृति पर
गया दिन, आई रात
गई रात, खुला दिन
ऐसे ही संसार के बीते दिन यक्ष मास
वर्ष कितने ही हज़ार।''[1]

4.2. जागरणमूलक वैचारिकी

आधुनिक कविता की वैचारिकी जागरणमूलक है। अपने में गंभीर और गौरवमयी रखनेवाली काव्य परंपरा आरंभ से सामाजिकता पर नज़र रहती थी। इसलिए समाज के साथ उसका अटूट संबंध रहा है। चारों तरफ व्याप्त अनैतिकताओं को उठाकर, उसने जनता को अंधविश्वासों तथा अनाचारों से जागृत करने का प्रयास किया था। काव्य की पूर्ववर्ती परंपरा की संवेदनात्मकता से लैस मनोरंजनात्मक काव्य प्रयास भी समान रूप में वर्तमान था। देखने की बात यह है कि उनमें से जनमत को छूने की शक्ति कितनी थी। द्विवेदीयुगीन महाकाव्यों तथा छायावादी समय में सृजित मुक्त कविताओं का स्वतंत्र अनुशीलन

---

1. निराला, अपरा, पृ. 15

इस बात को प्रमाणित करेगा कि काव्य भंगिमा के साथ इनमें नवयुगीन वैचारिकी का भी प्रभाव है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के समय में छायावादी कवि व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ काव्य स्वतंत्रता को भी स्वायत्त कर रहे थे। तब तक काव्य के अंगन तक जो विषय नहीं पहुँच सकते थे, वे आसानी से कविता होकर सामने आए। उदाहरण के लिए 'विधवा' –

कौन उसको धीरज दे सके?
दुःख का भार कौन लेस के?
यह दुःख वह जिसका नहीं कुछ छारे है,
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है।
क्या कभी पोंछे किसी ने अश्रुजल?
या किया करते रहे सबको विकल?
ओस कण सा पल्लवों से झर गया
जो अश्रु, भारत का उसी से सह गया। [1]

4.3. सांस्कृतिक जागरण की लहर

साहित्यिक संदर्भ में पत्रिकाओं का प्रचलन राष्ट्रीय व सामाजिक जागरण के लिए महत्वपूर्ण योगदान है। हर भाषा में मुद्रण की व्यवस्था तैयार हुई तो प्रांतीय तथा भाषिक स्तर पर पत्रिकाओं व पुस्तकों की छपाई होने लगी। लोकजागृति के लिए आलेखों के साथ उपदेशात्मक कहानियों का उपयोग आरंभ में जो वर्तमान था, परवर्ती समय में कहानी, उपन्यास आदि व स्वतंत्र या

1. निराला, अपरा, पृ. 56

खंडशः प्रकाशित होने लगें। प्रयोगात्मकता धीरे–धीरे बढ़कर विधात्मक समन्वय का माहौल भी सृजित हुआ। कथात्मक लेख, औपन्यासिक कहानी तथा आलोचनात्मक कविता जैसे नाम चर्चित हुए। कहने का तात्पर्य यह है कि कविता अपनी ज़मीन को इस संदर्भ में व्यापक कर देती है। वैचारिकता इस तरह कविता का महत्वपूर्ण अंग बन जाता है। हिंदी में मुख्यतः प्रगतिवादी कविताएँ इस तरह वैचारिकता की वाहिका रही थीं। नागार्जुन की पंक्तियाँ :

''मकान नहीं खुली है
दूकान नहीं खुली है
स्कूल नहीं खाली, खाली नहीं कॉलेज
खाली नहीं टेबुल, खाली नहीं मेज़
खाली अस्पताल नहीं
खाली है हाल नहीं
,खाली नहीं, खाली नहीं सीट
खाली नहीं फुटपाथ, खाली नहीं स्ट्रीट
खाली नहीं, खाली नहीं ट्रेन
खाली नहीं माईंड, खाली नहीं ब्रेन
खाली है हाथ, खाली है पेट
खाली है थाली, खाली है स्लेट में''[1]

---

1. नागार्जुन, खाली नहीं और खाली, नागार्जुन रचनावली, पृ. 118–119

4.4. स्त्री जागरण का परिप्रेक्ष्य

यह मानना पडेगा कि भारतीय जागरण ने स्त्री जागरण पर प्रभाव डाला था, या यों कहना होगा कि भारतीय जागरण की बृहत प्रक्रिया में स्त्री जागरण का भी महत्वपूर्ण योगदान है। तेज़ी से आगे बढ़ती दुनिया के अनुकूल व प्रतिकूल स्त्री पक्षीय बातें हो रही थीं, जिसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता था। अद्यतन समय में कवयित्रियों व स्त्रीपक्षीय कविताओं की बढ़ती संख्या इन सब बातों का परिणाम है।

कविता सैद्धांतिक स्तर पर बननेवाली चीज़ नहीं है। पर भावावेगों का समावेश हमेशा कविताओं में होता रहता है। नवयुगीन वैचारिकी के अनुकूल कविताओं में वैचारिक विषयों की समालोचना होती रहती है।

स्त्री विमर्श की सैद्धांतिकी विभिन्न देशों में विभिन्न है। ज़मीन एवं दुनियादारी के मुत्ताबिक इसका उपयोग–प्रयोग काव्य जगत में भी होता है। स्त्री विमर्श जब प्रबल रूप में सामने आया, भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक एवं साहित्यिक जगत में उसकी छाप पड़ी। साथ में यह छाप बहुत गहरी बनी हुई है।

जागरण काल से सामाजिक उन्नति का मोह उत्कट रूप में भारतीय जन मानस में वर्तमान था। वैचारिक बहस के माध्यम से सामाजिक जागृति का रास्ता खुलता गया। समाज सुधारकों के साथ कवियों का मिलन संभव होता था। कई समाज सुधारक साहित्य कार्य भी कर रहे थे। समाचार पत्र निकालने

तथा वैचारिक उन्नमन को जारी रखने के उनके प्रयास सार्थक रहे थे। पाश्चात्य तथा भारतीय वैचारिकी उस समय से लेकर विविध साहित्यिक रचनाओं में पिरोकर मिलती थी। परंपरागत चीज़ों को कालानुरूप सुधारकर प्रस्तुत करने की रीतियाँ सफल हुई, तो उस तरह के साहित्यिक प्रयास होते रहें।

उदाहरण के लिए हरिऔध की राधा प्रियप्रवास के कृष्ण की प्रणयिनी भर नहीं है, वह प्रश्न करनेवाली है। छायावादी कवि पंत 'ताज' को यथार्थवादी दृष्टि से देखते है तो इसका यह मतलब निकलता है कि समयकालानुसार पुर्नचिंतन की प्रवृत्तियाँ कविता के रूप एवं शैली पर प्रभाव डालती हैं। आगे के समय में यह प्रवृत्ति और अधिक सबल होती है। धूमिल ने श्रृंगार को छोड़ने का आह्वान किया है।

''ओ नटखट बहिनों
सिंगारनदान को छुट्टी दे दो
आईने से कहो वह कुछ देर अपना अकेलापन घूरता है
कंधी को झडे हुए बालों की याद में गुनगुना दो
रिबन को फेंक दो बांडिडस की अलगनी पर
यह चोरी करने का वक्त नहीं।''[1]

---

1. धूमिल, अतिश के अनार सी वह लडकी, कल सुनना मुझे, पृ. 36

4.5. हिंदी में स्त्रीत्व पर वैचारिकी का आरंभ

भारतीय स्त्रीत्व की स्थापना और विकास में स्त्री वैचारिकी की शुरुआत स्त्रियों के गद्यलेखन से शुरु माना जा सकता है। 'अज्ञात हिंदू औरत' की रचना 'सीमंतिनी उपदेश' से लेकर हिंदी में इसकी शुरुआत हुई। आगे कवयित्री होते हुए भी महादेवी वर्मा की गद्य रचनाएँ काव्य पटल पर स्त्रीत्व की महिमा एवं प्रभाव प्रस्तुत करनेवाली थीं।

कवयित्रियों की संख्या में कमी होने के कारण बीसवीं शती की आरंभकालीन स्त्री वैचारिकी की चर्चा में महादेवी वर्मा का नाम ही महत्वपूर्ण है। सुभद्राकुमारी चौहान की कविताएँ राष्ट्रीयता का आह्वान था, वे राष्ट्रीय आज़ादी प्राप्त करने के लिए स्त्रियों से मर्दानी होने का आह्वान कर रही थीं। 'झांसी की रानी' कविता इसका उदाहरण है। वाच्यार्थ से बढकर इस कविता का संकेतार्थ आज महत्वपूर्ण लगता है, जो अमुक ऐतिहासिक समय में स्त्रियों से वीर और पराक्रमी होने का आह्वान करती है। असलियत यह भी है कि स्त्री का पुरुष होना या पुरुष जैसा होना नहीं, समयानुसार प्रतिक्रियात्मक होना वाजिब है।

हिंदी कविता में महादेवी वर्मा का हस्ताक्षेप स्त्रीत्ववादी नहीं बताया जा सकता है। उनकी स्त्री वैचारिकी गद्य में स्पष्ट है। इस कारण से परवर्ती स्त्री चिंतन की चर्चा में वे 'श्रृंखला की कडियाँ' तोडने का आह्वान करनेवाली सिद्ध हुई।

कविता में वे परोक्ष ही बोल पाती थी, जो अज्ञात को संबोधित करके उसमें विलयित होने की चाहत स्पष्ट करती थी। पर सामाजिकता की

अधीशत्ववादी बातों से अपने को अलग रखने की नीयत वे सदा व्यक्त कर रही थी –

''यह मंदिर का दीप, इसे नीरव जलने दो
रजत शंख–धडिलाल खर्ज वंशी वीणा स्वर
गए आरती वेला को शतज्ञात लय से भर
जब था कल कंठों का मेल
विहँ से अपल तिमिर या खेल।
अब मंदिर में इष्ट अकेला
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो।''[1]

4.6. हिंदी कविता में स्त्री वैचारिकी का विकास

स्त्रियों पर कवियों या स्त्री विषय पर कविताएँ समाज व साहित्य के आरंभ से मौजूद थीं। पर स्त्री जागरण, स्त्री चिंतन या स्त्री शाक्तीकरण की वैचारिकी का आधुनिक परिदृश्य बाद में रूपायित हुआ। इसे संपन्न कराने खातिर कविताएँ लिखे जानेवाला समय आ गया।

आधुनिक समय का पहला पडाव स्त्री शिक्षा पर केन्द्रित था, पर उसमें स्त्री को सबलीकृत देखने की आकांक्षा मौजूद है। यह सबलीकरण परवर्ती अर्थ का सशक्तीकरण नहीं था। इंसान के रूप में स्त्री को देखने व जीवित रखने की आकांक्षाएँ थीं। हरिऔध की राधा में इंसानियत की चर्चा इसी मायने में होती थी। कुल मिलाकर बीसवीं शती के आरंभिक दशकों में समाज व संस्कृति

---

1. धूमिल, अतिश के अनार सी वह लडकी, कल सुनना मुझे, पृ. 36

में उपेक्षित व अवाक् पडी नारी को आवाज देने का साहित्यिक प्रयास हो रहा था।

पर यह प्रयास कवियों की तरफ से हुआ था। इसमें स्त्री वैचारिकी के लिए खास कार्य नहीं था। पर स्त्री उन्नमन की प्रेरणा स्त्री स्वायत्तता का बीजावपन आदि की दृष्टि से इनकी भूमिका महत्वपूर्ण है।

छायावादी कविता की काव्यचिंता और काव्य प्रवृत्ति स्त्री विषयों को काफी स्फूर्ति से आगे बढ़ाती थी। द्विवेदी युगीन उपेक्षिता शोषिता से श्रद्धा और इडा के रूप में उनका साहित्यिक विकास हो गया। पुरुष की कलम से स्त्री को श्रद्धा या इडा का प्रतिपादन मिल रहा था। पर तब भी महादेवी वर्मा अपने स्त्रीत्व पर खुला व सही अर्थों में वर्णन नहीं कर सकती थी। यह झिझक काव्य प्रवृत्ति से बढ़कर उस सामाजिक व्यवस्था का बखान करती है जो एक औरत को सीमित रखती है। उसके सर्वमान्य समाज सेविका स्वरूप के बावजूद महादेवी की कवयित्री झिझकती थी।

पाश्चात्य राष्ट्रों में इस समय तक स्त्री अधिकारों की वैयक्तिक व औसत पूर्ति हो रही थी। मतदान का अधिकार कई देशों में महिला दलों ने संघर्ष के बल पर हासिल किया था। इस सामाजिक, राजनीतिक परिवर्तन की जानकारी इस देश के पददलित वर्ग को भी हो रही थी। संविधान में लिंगभेद हटाने का प्रावधान किया गया। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मतदान या न्यायिक समानता के नियमों को अमल करने का दबाव पडने लगा। पर यह बताना होगा कि नियम,

न्याय एवं सैद्धांतिक मान्यता के बावजूद समाजों, समुदायों, राज्यों व परिवेशों में स्त्री–पुरुष भेदभाव चलता रहता है। लिंगभेद के बुरा अनुभव बिना यहाँ पर कोई स्त्री जीवित नहीं रहती है।

लिंगभेद के बुरे अनुभवों व कचोरते प्रसंगों पर स्त्री आत्मा यही सोचती है कि ये सब उसकी देह की वजह से है। अपने में कैद इस देह की एहिक अस्मिता उसे हर दम खुद पर सोचने को मजबूर करती है। न्याय व नियम भी कई बार स्त्री के देहसंबंधी बयानों को रोक नहीं पाते है। तभी कवयित्री कहती है कि यह उसका अपना संघर्ष है। वह अपनी दुनिया व परिसरों से लडकर ही सही जीवन को आगे बढ़ने का प्रयास करती है।

''यह मेरा संघर्ष
तुमसे नहीं
अपने आप से है।
इसकी दरारों में दफनाई
देह मेरी है
इसकी पतझड शाखा पर अटकी है
मेरी आजन्मी आत्मा।''[1]

4.7. पाश्चात्य वैचारिकी का प्रभाव

मेरी वोलसणक्राफ्ट के काफी समय बाद 1949 में, पाश्चात्य जगत में सिमन द बोउवर की किताब 'द सेकेन्ड सेक्स' (हिंदी में 'स्त्री उपेक्षिता') सामने

---

1. अनामिका, अनुष्टूप, पृ. 70

आई। इससे वहाँ पर स्त्री के सबलीकरण पर व्यावहारिक चिंतन मनन तेज हुआ। हिंदी में इस से पहले ही महादेवी वर्मा की गद्य कृतियाँ, मनुष्यत्व, स्त्रीत्व तथा हाशिए के जीवन की मुक्ति पर चिंता जगा रही थीं। एक दृष्टि से महादेवी वर्मा की इन रचनाओं का बड़ा ऐतिहासिक महत्व है। उन्हीं की नींव पर ही, पिछली शती की हिंदी कविता में स्त्री के साहित्यिक जागरण खडा हो गया था।

यहाँ पर यह जोडना अनिवार्य है कि पाश्चात्य जगत में तब तक नारीवाद की तीन लहरों की चर्चा मिलती है। इन तीन लहरें स्त्री अधिकार, स्त्री स्वायत्तता तथा स्त्री सबलीकरण की प्रवृत्तियों पर केन्द्रित थीं। नारीवाद के विभिन्न स्वरूप जैसे उग्रवादी, उदारवादी, वामपंथी या समाजवादी, समलिंगी आदि की चर्चा विविध संदर्भों पर उभर आई। इनमें वैचारिक स्तर पर भेद–विभेद के ऐतिहासिक प्रकरण भी सामने आए। विविध मुद्दों व संदर्भों पर इनमें मतभेद होने पर भी राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्त्री जागरण पर सभी एकमत रहते हैं। यह भी बताना अनिवार्य है स्त्री मुक्ति के विषय में किसी को शंका नहीं है। मतभेद या बहस उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो कार्य चलाती है, उसके मार्गों व कार्यसूचियों को लेकर है। मतलब यह है कि स्त्री जागरण, स्त्री सबलीकरण, स्त्री स्वायत्तता तथा स्त्री मुक्ति की वैचारिकी देश, काल, समय व संदर्भ के अनुसार किंचित परिवर्तन दिखाती है।

भारत में स्त्रीवाद का कोई खास आंदोलनात्मक संगठन पहले नहीं था। स्वतंत्रता के संघर्ष में पुरुषों के साथ लडने के लिए स्त्री झुंडों का उपयोग था। कांग्रेज़ पार्टी का महिला विंङ् उसमें उपयुक्त था। स्वतंत्रता के बाद कई

राजनीतिक दल रूपायित हुए और हर एक ने वनिता विंङ् पर ध्यान दिया। ये सभी दलीय राजनीति के शिकार दिखते हैं। दलीय पहचान के बिना भारतीय स्त्रीपक्षीय दर्शन पर चर्चा मिलती है, जो सामान्य एवं वितरित आवाज़ों व कार्यों के बल पर होती है।

दलीय व संगठनात्मक स्वरूप से बढ़कर भारत में स्त्रीपक्षीय बातों का प्रचार प्रसार गंभीर है। साक्षरता, संगठनात्मक चातुर्य, उद्यमी वृत्तियाँ, राजनीति, प्रशासन, कला एवं साहित्य में स्त्री भागीदारी को लेकर किसी को आज शंका नहीं है। इस माहौल के सृजन में पूरी दुनिया में फैले स्त्रीवादी चिंतन का महत्वपूर्ण असर है।

4.8. भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री वैचारिकी

तीसरी दुनिया के प्रदेशों में भारत का बहुत बडा स्थान है। जहाँ संविध ाान व न्याय के आधार पर लिंगभेद अपराध भी है। दुनियाभर के राष्ट्रों में हुए व हो रहे स्त्री आंदोलनों के प्रभाव देखकर भारतीय सामाजिक जगहों पर भी उनका अनुपालन व अनुसरण देखने को मिलता है।

भारत में स्त्री वैचारिकी का उदारवादी प्रभाव अधिक वर्तमान है। इने गिने उदाहरणों या संदर्भों में उग्रवादी स्वर मिलने पर भी समयानुसार उसका प्रवाह उदारवादी या समाजवादी तय होता है।

भारतीय समाज पुरुष सत्तात्मक है, जहाँ पर हर संस्था उसके हितानुसार रूपायित है। इसलिए स्त्री वैचारिकी पर व्यापक बहस होने पर भी व्यावहारिक स्तर पर स्त्री मुक्ति का मार्ग सटीक नहीं रहता है। साहित्य तथा कला के

जगत् में स्त्री मुक्ति एवं स्त्री सबलीकरण करनेवाले प्रयास आते रहते हैं, जो समाज के पुंसवादी रवैयों पर चोट पहूँचाते हैं। पर इन प्रयासों को पूर्णतः सफल नहीं कहा जा सकता। यह भी बताना है कि इन प्रयासों के बिना साहित्य और काव्य जगत् का अतिजीवन भी संभव नहीं। इसलिए भारतीय भाषाओं में कोई ऐसी नहीं है, जिसमें स्त्री सहित हाशिए की अस्मिता तथा अस्तित्व चिंतन पर साहित्य रचना नहीं की जाती है। हिंदी कविता भी इसी परिप्रेक्ष्य में काम करती है।

कवयित्री कात्यायनी भारतीय औरत और घर के अन्तसंघर्ष को कविता की पंक्तियों में यों उतारती है –

''एक लंबा सफर तय किया औरत ने
पागल खाने तक का
लेकिन आश्चर्य।
आखिरकार उसेश्रमादान मिल ही गया
उसने पाया कि यह भी एक घर था
तीमारदारी, चौकरी
और हिदायतों के साथ
फर्क सिर्फ इतना था कि
यह उनका घर था।''[1]

---

1. कात्यायनी, इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ. 69

4.9. हिंदी में स्त्रीत्व का साहित्यिक जागरण

स्त्रीत्व पर चिंतन अथवा स्त्री अस्मिता चिंतन बीसवीं शती के अंतिम दशकों में स्थापित हुआ। भले ही उग्र नारीवाद, उदारवादी नारीवाद, समलैंगिक नारीवाद जैसे पाश्चात्य विभाजन में भारतीय स्त्रियाँ रुचि नहीं लेती हैं, इन सब चिंतन सरणियों के साथ वैचारिक विमर्श जारी रखने की इच्छा और कौशल यहाँ की औरतों में है। हिंदी की कवयित्रियाँ अपने काव्य के प्रारंभ से लेकर समकालीन साहित्य के संदर्भ तक इन चिंतन पद्धतियों से प्रेरणा पाने की क्षमता में दिखाती हैं। इनमें कई अपने को नारीवादिन तक मानती होंगी, मगर स्त्री होने–रहने व जीने की दिक्कतें हर एक की आवाज को तदनुरूप बनाती हैं।

स्त्री पक्ष की कविताएँ सामान्य दृष्टि से ही, जागरणमूलक हैं, क्योंकि स्त्री शतियों से उपेक्षित व शोषित है। आज भी उसका शोषण जारी है। पर आज शोषण के औजारों में थोड़ा बहुत परिवर्तन नज़र आता है। अंधविश्वासों व अन्यायों में समयानुसार बदलाव आया है, जो स्त्री जागरण के लिए सहायक था। मगर पितृदायकता और पुरुषसत्तात्मकता अपना अधिकार छोड़ना नहीं चाहती हैं। पुरुषाधिकार और मर्दवाद के साथ बाज़ारी प्रवृत्तियाँ भी जुड जाती हैं तो दहेज जैसे अत्याचारों का नवीन स्वरूप देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए, हिंदी कविता के इतिहास में शताब्दी के कवि माननेवाले सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की कविता 'सरोज स्मृति' को विद्वानों ने विलाप काव्य कहा था। असलियत यह है कि नामी कवि होते हुए भी वे कविता द्वारा यह बताते हैं कि अपनी प्रिय पुत्री को वे कुछ दे नहीं पाए। कविता की पंक्तियाँ दर्दनाक बोलती हैं –

आँसुओं सजल दृष्टि की छलक
पूरी न हुई जो रही कलंक
प्राणों की प्राणों में दबकर
कहती लघु आँसु में भर
समझता हुआ मैं रहा देख
हटती थी पथ पर दृष्टि टेक[1]

कवि की यह वेदना आज भी विविध स्तर के लोगों में विविध संदर्भों पर विद्यमान रहती है। बेटी को बोझ माननेवाले समाज की यह मानसिकता, स्त्री भ्रूणहत्या के आंकडों से साफ होती है।

समकालीन कविता आजन्मी बच्चियों के इस आंकडे से संबंध ही नहीं शिकायत के रूप में भी है –

आखिर क्यों है तुम्हें
हमारे अस्तित्व सेइतनी लिद
हमारे कोमल सपनों से इतनी नफरत
घर बार जीने की चाह में छटपटाती
और जन्म से पहले ही
मरने को मजबूर कर दी जाती
हम हैं
तुम्हारी आजन्मी बेटियाँ[2]

---

1. निराला, सरोजस्मृति,
2. कविता, पाति आजन्मी बेटियों की, आजकल, जुलाई 2004, पृ. 27

इक्कीसवीं शती की शुरुआत से लेकर भ्रूणहत्या, बालमज़दूरी, बाल अशिक्षा, बच्चों का ट्रेफिकिंग, यौन उत्पीडन आदि सभी समस्याओं को कविता देखती है। अखबार में समाचार आते ही इनपर कविताएँ छप कर आने के अवसर भी हैं। इनसे पाठकीय सजगता एवं जागरूकता बढ़ती है।

यह शर्मनाक बात है कि दुनिया के इतने अग्रसर होने व स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने सारे वर्ष गुज़र जाने के बाद भी लोकतंत्रीय सरकार या प्रजातंत्रीय प्रणाली, दहेज जैसी समस्याओं व उत्पीडनों को रोक नहीं पाती है। दहेज का दानवीय रूप दूसरे ढंग में आज भी मौजूद है।

4.10. स्त्री प्रतिरोध की विविधता

जागरणमूलक वैचारिक विमर्श के प्रचार से कविता की रुचियों में खास परिवर्तन भी समकालीनता के अंतर्गत है। कालजयी कविता सामाजिक साहित्यिक समय की गतिविधियों को आत्मसात करने में कोई चूक नहीं करती है। कवि को कार्यकर्ता माननेवाला लोग भी हैं, हालाँकि यह कोई साहित्यिक शर्त नहीं है।

काव्य प्रतिरोध एवं स्त्री पक्ष के सम्मेलन से प्रतिरोध के नए मुद्दे व विषय सामने आये। खुला लेखन आजकल की स्त्रियों के लिए उतना कठिन कार्य नहीं है। समकालीन कविता के परिदृश्य छाँटने से यह भी स्पष्ट होता है कि स्त्रीत्व की विविध छवियाँ जैसे गृहस्वामिन, माता, बहू, मजदूरिन, लड़की, कामकाजी स्त्री आदि पर कविताएँ लिखी जाती हैं। साथ ही विवाह, परिवार, आर्थिक स्वायत्तता, विधवा की स्थितियाँ, वेश्यावृत्ति, विवाह के संस्थागत स्वरूप,

घरेलू तथा बाहरी छेड़छाड़ व उत्पीडन, कामकाजी स्त्री की समस्याएँ, तलाक आदि सब स्त्री समस्याओं पर कविता की आँखें चलती हैं। आज की कविता की खासियत यह भी है कि वह स्त्री की समस्या को वर्गीय स्तर से उठाकर सामाजिक समस्या मानती है।

4.10.1. स्त्रीत्व के विभिन्न रूप

बताया गया है कि हिंदी कविता के साहित्यिक इतिहास में स्त्री वैचारिकी के प्रभाव में कविताएँ सृजित होनेवाले दौर को समकालीन विशेषता से जोडकर प्रस्तुत किया जाता है। स्त्रीत्व के विभिन्न रूप इस समय में मिलते हैं। इससे बढ़कर ये संख्या में भी बहुत अधिक हैं। समकालीन समय के कवि, कवयित्रियों में कोई भी ऐसा नहीं है जो स्त्रीत्व की विभिन्न छवियों पर कविता नहीं लिखा हो।

4.10.1.1. मातृत्व एवं गृहस्थी

माँ थी
सबके बाद खानेवाली
जिसके लिए दाल नहीं
देयकी में बची थी हलचल
चुल्लू भर पानी की
और कटोरदान में माफके चन्द्रमाँ जैसी
रोटी की छाया थी।[1]

---

1. चन्द्रकांत देवताले, कम खुदा न थी परोसनेवाली, उजाड में संग्रहालय, पृ. 77

माता भारतीय परिसर में सर्वादरणीय है। दूसरी साहित्यिक विधाओं जैसी कविता में भी सबसे अधिक प्रशंसा व पूजा माता की हुई है। समकालीन कवियों में भी माता की छवियाँ बहुत हैं। वर्ग या समाज जो भी हो, माता हमेशा त्यागमयी व ममतामयी ही रहती है। स्त्री या पुरुषभेद बिना कविता की आवाज़ में मातृत्व को पूजनीय उतारती है। समकालीनता के पास जो भाव भेद उपलब्ध है, वह निम्नलिखित काव्यांश से स्पष्ट है।

''माँ ने कभी विलाप नहीं किया
वह, कभी इतनी कमज़ोर
इतनी साहसी नहीं हुई।
अच्छा हुआ यह
बहुत अच्छा
नहीं तो कितना डरा होता।''[1]

माँ, बच्चों व परिवार के दूसरे सदस्यों की खातिर हमेशा अड़िग रहती हैं। उनके मानसिक संबल पर पूरा घर घूमता है। यह बात पुराने ज़माने की स्त्रियाँ समझती नहीं थीं। वे गुलामी जीवन जीती थी, पर आज की माँ यह बात जानती हैं कि परिवार के रख–रखाव में उनकी खास व अनुपेक्षणीय भूमिका हैं।

4.10.1.2. पढ़ी लिखी और कामकाजी महिला

एक पढ़ी लिखी औरत
अपनी सारी पढ़ाई के बावजूद

---

1. नवल शुक्ल, दसो दिशाओं में, पृ. 48

बिता देती है शेष जीवन
व्यवस्था को पढ़ाते हुए[1]

समकालीन औरतों में काफी पढ़ी लिखी व कामकाजी हैं। इन्हें मालूम है कि इनके साथ कई दफा लिंगभेद का व्यवहार होता है। अनुभव, उन्हें अंतर्द्वंद्व में डाल देता है। भीतर से वे जानती हैं कि उनके साथ अन्याय होता है। आर्थिक स्वायत्तता व चयन के अधिकारों के बल पर भी वे समान सामाजिक हैसियत प्राप्त नहीं कर पाती। बाहर से सतत तंग करने वाले भेदभाव उसे अस्वस्थ कर देते हैं। उपर्युक्त कविता का यही इंगित है कि समय व संदर्भानुसार स्वायत्त होने पर भी स्त्री का मुठभेड हमेशा पुरुष सत्तात्मक समाज से होता है, क्योंकि पढ़ी लिखी स्त्री व उसके वैयक्तिक जीवन दर्शन में जो सकारात्मक परिवर्तन आया है, उसके अनुसार व्यवस्था नहीं बदली है।

कामकाजी स्त्रियों पर यह बताया जाता है कि इने गिने उदाहरणों के अलावा समकालीन संदर्भ में जीवित स्त्री गृहस्थी, मातृत्व आदि के साथ ही बाहर काम पर जाती है। उसे दोहरे या तिहरे दायित्व को संभालना पडता है। दूसरों का बोझ संभालनेवाली औरत अपने तन–मन व स्वास्थ्य को बिगाडती है और खुद अकेली महसूस करती है।

पहले की स्त्रियाँ, इसे अपनी नियती मानती थी और घुट घुट कर समाप्त होती थी। आज कविता समेत कई प्रसंग उसके सामने आते है जिनमें वह अपने साथ व्यवस्था पर प्रश्न कर सकती है।

---

1. पुष्पिता, सारी पढ़ाई के बावजूद, दस्तावेज, पृ. 61

क्या तुम जानते हो
पुरुष से भिन्न
एक स्त्री का एकांत
घर प्रेम और जाति से अलग
एक स्त्री को उसकी अपनी ज़मीन
के बारे में बता सकते हो तुम [1]

4.10.1.3. मज़दूरिन और आदिवासी औरत

मज़दूरिन या आदिवासी औरतें कई प्रकार से शोषित हैं। घरेलू दायित्व, पारिवारिकता आदि के साथ पुंससत्ता से वे मारी रहती हैं। मेहनतकश बनी रहने पर भी वे अन्या रह जाती हैं और ज़िंदगी के दॉव पर उपकरण रहती हैं–

''युग युग से अपनी मर्यादा
और पहचान से अपरिचित
नारी! तू कितनी हीन, कितनी दीन
कितनी दलित है।
द्वापर हो या कलियुग
कुरान हो या पुराण
रामायण हो या महाभारत
हर कहीं तू मात्र एक वस्तु है
जो खरीदी जा सकती है,
बेची जा सकती है
लगाई जा सकती हे जो जुए में।''[2]

---

1. निर्मला पुतुल, अपने घर के तलाश में, क्या तुम जानते हो, पृ.
2. भीम शरण सिंह, तोडनी होगी बेडियाँ, पृ. 40

ऐसी अनेकों कविताएँ समकालीन परिसर में लिखी जाती हैं। आदिवासी औरतों की मैली, कुचली व अशिक्षित स्थितियों पर निर्मला पुतुल की कविताएँ खूब प्रकाश डालती हैं।

समकालीन परिसर के सभी प्रमुख कवियों व कवयित्रियों ने मज़दूर औरतों पर सहानुभूति प्रकट की है। नौकरानियों, सेविकाओं, आयाओं तथा मैला ढोनेवाली नारियों की सेवा समकालीन कविता दर्ज करना चाहती है। कवियों के रुख में यह भी ज़ाहिर है कि पूरी प्रजाति एवं सामाजिक उन्नति के बाद भी यह सभ्यता इनके परिश्रम को कम करने का औजार या उपचार नहीं बना पाती है। कई जगहों पर कवियों ने शर्मिन्दगी भी प्रकट किया है –

हमने सूपर कंप्यूटर बनाया
हमने बनाये
परमाणु बम
पर इक्कीसवीं सदी के
द्वार पर खडे हम
हमारी व्यवस्था में
सिर पर मैला ढोती
सुलाचनाओं के लिए
हम आज तक
नदी बन पाये।
थोडी सी जगह

हम शर्मसार हैं
सुलोचना माँ
शर्मिन्दा हैं हम।[1]

4.10.1.4. मुक्त होती औरत और परंपरा का द्वंद्व

पैंट शर्ट पहनती है, अदीति
छोटे छोटे बाल रखती है उदीति
शॉक में शुमार है साइकिल चलाना
चद्दर नहीं बिछाती है
तकिए में कवर नहीं लगाती है
शाम ढले बेंट से बॉल को उडाती अदीति
कितनी बार कहा, धीरे चलो
अदीति! सुना क्या?[2]

मुक्त होती लडकियाँ व औरतें कई प्रकार के सामाजिक प्रश्न खड़ा करती हैं, परंपरागत विश्वासों पर पानी फेरती हैं। कुछ उदाहरणों को उठाकर नारी मुक्ति चिंतन पर कटू आलोचना भी की जाती है कि वह अराजकता व पारिवारिक असुरक्षा के लिए राह देता है। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रीय के मतानुसार नव पूँजीवादी बातें, स्त्री को निजी और केन्द्रीय समस्याओं को हराती हैं और उसका उपयोग करती हैं। उनका तर्क है कि नारीवादी संगठनों को इस पर ध्यान देना अनिवार्य है।

---

1. संजय शाम, दस्तावेज, जनवरी–मार्च 2007, पृ. 21
2. आरती झा, पडोस की लडकी अदीती, हंस, अप्रैल 2004, पृ. 43

''आज नारीवादी संगठन या आंदोलन की एकसीमा यह भी है कि न सिर्फ इसका संचालन, अधिकांशतः संभ्रांत या शिक्षा, साहित्य, समाज, व्यवसाय आदि की अग्रणी महिलाएँ कर रही हैं, बल्कि वह ज़्यादातर उनका ही होकर रह गया है जबकि इस आन्दोलन की सही आवश्यकता असंख्य ग्रामीण, कस्बाई और शहरों में भी घर–घर घुटती स्त्रियों को है। वे अब भी सदियों पुरानी अवस्था में जी रही हैं। किसी आंदोलन का संचालन तो निश्चय ही प्रबुद्ध, जागरूक और किसी हद तक ऐसे लोग करते हैं, जिनके पास इसके लिए अवसर और अवकाश है, लेकिन जब तक उसके प्रसार का क्षेत्र बहुत व्यापक नहीं होता तब तक इसका लाभ उन्हें नहीं मिलता जिन्हें वास्तव में मिलना चाहिए।''[1]

आगे वे जोडते है कि ''साहित्य केवल साहित्यकारों के बीच पढ़ने या बहस करने की चीज़ नहीं है, व्यापक पाठक तक पहुँचने पर ही उसकी सार्थकता है, इसी तरह नारीवादी आन्दोलन तमाम उपेक्षित, शोषित, बंधित महिलाओं तक पहुँचने पर ही सार्थक होगा और तभी शायद कृत्रिम संभ्रांतता के जाल से मुक्त होकर पहचान सकेगा कि स्त्री स्वाधीनता पर समानता, उसके अधिकार और कर्तव्य, उसकी ममता और विद्रोह को कौन–सी दृष्टि और दिशा दी जानी चाहिए।''[2]

घूँघट हटानेवाली लडकियों तथा समुदाय से बाहर प्रेम विवाह करनेवाले युवा–युवतियों पर ग्राम पंचायतों का निर्णय या धार्मिक उस्तादों का फत्वा इस

---

1. प्रभाकर श्रोत्रिय, सौन्दर्य का तात्पर्य, पृ. 31
2. वही, पृ. 31

तरह सुर्खियों में आता है। मुक्त होती औरत की स्थितियाँ कई बार परंपरागत समाज और पुरुष सत्ता को अस्वस्थ कर देनेवाली हैं। मगर स्वनिर्णय करनेवाली स्त्री जब तक समाज को ठेस नहीं पहूँचाती है, तब तक चयन के अनुसार जीवन संभालने का अधिकार उसे स्वायत्त है। अतः स्त्री चेतना से डरनेवाला असल में मानवाधिकार या मानवीय उन्नमन का विरोध करता है।

4.10.1.5. अप्रत्यक्ष चेतनाएँ

विधवा, वेश्या, नाबालिग लडकियाँ, स्त्री भ्रूण, हिजडा, अविवाहिता माँ, नौकरानी, उत्पीडित लडकी, नन आदि कई स्त्री अस्मिताएँ इस समाज में जीवित हैं, जिनके बारे में पुराने ज़माने की कविताएँ विरल ही बोलती थीं। समकालीन कवि मंगलेश डबराल कॉलगार्ल पर कविता लिखते हैं।

''वे अकेले नहीं हमेशा समूह में पकडी जाती हैं
किसी बंगले या ज्ञानदार फ्लैट सेसामान की तरह निकाली जाती हुई
टीवी या अखबारों में एक झलक दिखने के बाद वे लापता हो जाती है
उनकी अपनी कई सहेलियाँ शायद घूमती होंगी
राजधानी के व्यस्त बसस्टॉपों पर पहचान छिपाने के लिए
घर लौटती आप औरतों के बीच धुलीमिली हुई
बताते हैं शहर में ऐसे कुछ एकांत कोने हैं
जहाँ शाम होते ही वे प्रकट होती हैं
प्रतीक्षा और निकालता से भरी हूबहू प्रेमिकाओं सटीखी दिखती है।[1]

---

1. मंगलेश डबराल, कॉलगर्ल, कवि ने कहा, पृ. 131

वेश्याओं पर द्विवेदी युगीन कविता हेयदृष्टि व्यक्त करती थी। खुशी की बात है कि समकालीन परिसर में इन सब पर कविताएँ मिलती हैं। धीरे–धीरे इनके अस्तित्व व अस्मिता पर समाज, कविता और लोग सोचते हैं, इसका प्रमाण मिल जाता है। ये भी इंसानी चेतनाएँ हैं, इस बात पर आज किसी को शंका नहीं है। विष्णू खरे की कविता 'शिविर में शिशु[1] हिजड़ा' की उपेक्षित ज़िंदगी पर प्रकाश डालती है तो यश मालवीय की कविता 'माँ की जैसी एक चुप्पी' विधवा माँ पर है। शैलप्रिया की कविता 'इक्कीसवीं सदी में स्त्री'[2] कोख से मारी जानेवाली लडकियों पर आवाज़ देती है[3] तो संजयशाम की कविता 'सुलोचना' नौकरानी के जीवन संकटों को विषय बनाती है।[4]

कल्लोल चक्रवर्ती की एक कविता है, 'भूख'। उसमें वे बताते हैं–

''भूख औरत को बाज़ार में खींच लाती है
और बच्चों से किताबें छीन कर उनके प्राणों में
पकडा देती है हथौडा।''[5]

आज की कविता सोचती है। हर जीवन की धड़कनें सुनने और उसे स्त्री के पक्ष में व्याख्यायित करने का प्रयास करती है। बदलचन कहकर जिन जिन औरतों पर समाज चिढ़ व्यक्त करता है, यहाँ पर कवि उसके सामाजिक

---

1. विष्णु खरे, काल और अवधी के दरीयमान, पृ. 70–72
2. यश मालवीय, आजकल, दिसंबर 2003, पृ. 24
3. शैलप्रिया, साक्षात्कार, अप्रैल 2003, पृ. 48
4. संजय शाम, सुलोचना, दस्तावेज, जनवरी–मार्च 2007, पृ. 21
5. इंद्रप्रस्थ भारती, अप्रैल–जून 2004, पृ. 24

कारणों पर प्रकाश डालना चाहता है। 'देर शहर में एक बदनाम औरत होती है'[1] कविता भी इस पंक्ति में आती है।

बालिकाओं तथा युवतियों पर यौनात्याचार के मामले जब सूचित होते हैं, आज के कवि पुराने जैसे कोफ्त में नहीं रह सकते। वह व्यंग्यपूर्ण आत्म विमर्श और आलोचनात्मक सवाल लिख डालता है।

कहने का यही अर्थ है कि पिछले कुछ समय से हाशिए की आवाज़ों को कविता सकारात्मक ढंग से बुलन्द कर रही है। पर समाज की विडंबनाएँ और समस्याएँ कविता स्वर मात्र से खत्म नहीं होती। मुक्तिबोध की मशहूर कविता पंक्ति के कहे अनुसार वह आवेगत्वरित होकर उभरती है, और अपना ध्येय पूरा करने का प्रयास करती है। उसके सामने समस्याएँ आती रहती हैं, तब वह अपनी नई उपस्थिति व उसका उपचार ढूँढ़ती है।

4.11. नवयुगीन समस्याएँ

पूँजीवादी प्रवृत्तियों ने भूमंडलीकृत स्त्री को जागृति दी है। पर उसने उसके सामने नई समस्याएँ भी खडी कर दी हैं; जिनसे पुरानी स्त्री मुखतिब नहीं थी। उदाहरण के लिए साईबर अश्लीलता, शरीर प्रदर्शन, यौन उच्छृंखलता, फैशन जगत का यौन विपणन आदि को देखकर यह बताना पड़ता है कि इस तरह का घिनौना स्त्री विरोध इसके पहले कभी नहीं हुआ था। स्त्री को राजनीतिक व यौनिक उपकरण बनानेवाली इस प्रवृत्ति पर सामाजिक चिंतकों ने आशंका प्रकट की हैं। महत्वपूर्ण चिंतक अभयकुमार के मतानुसार,

---

1. विष्णु खरे, काव्य और अवधि के दरमियान, पृ. 14

''भूमंडलीकरण ने औरत को 'पावर वुमेन' बना दिया है। यह सब करने के लिए उसे किसी नारीवादी गोलबंदी अथवा सिद्धांतशास्त्र की ज़रूरत भी नहीं पड़ी। केवल बाज़ार, पूँजी और संचार क्रांति की ताकत के दम पर औरत की दुनिया बदल गयी है। भूमण्डलीकरण ने दावा किया कि अब पहले से कहीं ज़्यादा औरतें अपने लैंगिक हित को ध्यान में रखकर वोट डालती हैं और राजनीति में सीधी भागीदारी करती हैं। अब पहले से कई ज़्यादा औरतों के पास अपनी निजी आमदनी का स्रोत है और वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हैं। सौन्दर्य, उद्योग और पॉप संस्कृति के ज़रिये उन्होंने अपनी यौनिकता का दोतरफा इस्तेमाल किया है, अर्थात् ख्याति और घर कमाने के साथ–साथ उन्होंने पुरुष को चमत्कृत कर दिया है। अब पहले से कहीं ज़्यादा औरतें आर्थिक और प्रशासनिक सत्ता में निर्णयकारी हैसियत प्राप्त करती जा रही हैं। पुरुषों के हाथों का खिलौना बनने के बजाय उनके हाथ में पुरुषों को अपनी मर्ज़ी से चलाने की ताकत आ गयी है।''[1] शंका नहीं कि पितृसत्ता के रूपों पर गंभीर बहस के बावजूद, बाज़ार के प्रच्छन्न तौर तरीकों तथा चालाकियों के बल पर स्त्री शोषण जारी है।

जहाँ जहाँ स्त्री को उपकरण बनाया जाता है वहाँ वहाँ से उसे ही कई आलोचना और धिक्कार सुनना पड़ता है। फैशन की दुनिया, बाज़ारवादी विपणन, यौन धंधा, ट्राफिकिंग आदि में शामिल औरतों के उदाहरण लेकर यह बताया जाता है कि इनकी करतूतों से पूरी जाति का ह्रास होता है और निंदा होती है। सही है कि औरतों को इन प्रकरणों पर उपकरण बनाया जाता है।

---

1. अभयकुमार दूबे, विजयबहादुर सिंह योगेन्द्र यादव (सं.), भारत का भूमंडलीकरण, पृ. 22

सच्चाई यह भी है कि उपभोक्तावादी समय और संस्कृति के जंजालों से औरत मुक्त नहीं हो पाती है। वह भी महत्वकांक्षाओं में पडकर कभी कभी आत्मविरोधीनी बन जाती है और पुंस संस्कृति के हाथ की पुतली बन जाती है। अद्यतन कविता इस परिवर्तन पर अफसोस प्रकट करती है –

''ब्यूटी के पट था
देह प्रदर्शन था
लेकिन आत्मप्रदर्शन नहीं था
पुरस्कार था
किंतु दृष्टि का विस्तार नहीं था
बाज़ार था
बाज़ार में बिकती हुई आति की बेहोशी थी।
वह मेरे जीवन का सबसे उदास दिन था।''[1]

सच्चाई यह है कि बाज़ारी प्रवृत्तियों के दबाव से स्त्री मुक्त नहीं हो पाती। अपने पर सोचती हुई स्त्री महत्वाकांक्षाओं में पडकर वह खुद को दॉव पर लगाती है।

''चलती गाडी में
एक वहशी ने
अबोध बालिका का
कर डाला बलात्कार

---

1. पुष्पप्रदर्शिनी, फौजीदार माली, साक्षात्कार, दिसंबर 2003, पृ. 54

दर्जनों लोग खडे देखते रहे
जैसे तमाशा हो मदारी का
क्यों बन गए ये सब
सब बुत
न आई शर्म
न जागी संवेदना
न याद आई अपनी ही
कोई बहन या बेटी
या पडोस की कोई बालिका।''[1]

इस समाज में रहते हुए भी अन्यता की खाई में जीवन बितानेवाली हिजडों पर विष्णु खरे की कविता उनके सामाजिक अस्तित्व की चिंता करती है। दूसरों की मारपीट व उपेक्षा सहनेवाली इनपर सरकार तथा समाज का नज़रिया बुरा है। इनके जीवनाधिकार पर कविता सोचती है और सामाजिक रवैयों पर ज़रूरी परिणाम का सिफारिश करती है। देश की नागरिकता, राशनकार्ड तथा पहचान पत्र से वंचित रहने से हिजडाओं को झुंड में रहना पडता है, जिसकी मुक्ति एवं रक्षा समकालीन संदर्भ का ध्यातव्य मुद्दा बन गया है। अलिंग अस्मिता के नाम पर विवेचन चालू करनेवाले समाज या देश पर कविता का धिक्कार है –

''हिजड़ों से खुद्दार कौन तक को
जिस वेश्याओं की तरह सडकों के किनारे
खडा होना मजूर नहीं था

1. मधुपशर्मा, धिक्कार, मधुमति, अगस्त 2004, पृ. 45

सटे बाज़ार अपना पेशा और धरम छोडना पड़ा
और प्लेटफार्मों और लाल बत्तियों पर अपाहिजों की तरह
भीख माँगने पर मजबूर हुई
देश का इतना पतन हुआ।''[1]

4.12. उत्तर नारीवादी चिंतन

बताया जाता है इक्कीसवीं शती उत्तर नारीवादी चिंतन का समय है। भारतीय स्त्री के जागरणमूलक विकास की दृष्टि से इस समय की सैद्धांतिक अवधारणा की यही चाल है कि यह स्त्रियों से आत्मविमर्श करने को बताता है। पितृसत्ता को समाप्त करने के साथ–साथ स्त्री–पुरुष संबंधों की पुर्नरचना पर ज़ोर देने को कहता है। स्वत्व चिंतन तथा अस्तित्व चिंतन जब सीमित अस्मिता विमर्श बन जाता है, तब उस पर निगरानी रखने को बोलता है। सामाजिकता को महत्व देकर स्त्री व पुरुष दोनों पर समान चिंतन करने का दबाव डालता है। भूमंडलीकृत दुनिया, पूँजीवाद, अलंकारवाद तथा साइबर संस्कृति की स्त्री विरोधी चर्चाओं को समझने तथा प्रतिरोध के लिए समकालीन कविता प्रयास करती है।

समकालीन कवयित्रियों में वैचारिक विमर्श में सबसे आगे रहनेवाली कवयित्री है, कात्यायनी। उनकी वैचारिकी स्त्री समस्याओं को तीसरी दुनिया अथवा भारतीय सामाजिक माहौल में परखने के साथ–साथ वैश्विक परिदृश्य के वामपंथी विचारों को भी आलोडित करती है। स्त्रीत्व पर उनकी सशक्त कविताएँ सामने आई। जैसे –

---

1. शिविर में शिशु, काल और अवधि के दरीमयान, पृ. 72

दो स्त्रियाँ थी
एक ने प्यार किया इसी देश काल में
सच्ची मुच्ची का
वह इसी देश काल की
होकर रही
दूसरी ने सोचा देश काल के बारे में
प्यार न कर सकी,
पर उसने लिखी
दुनिया की सबसे अच्छी प्रेम कविताएँ [1]

स्त्री पक्ष की कविता कई बार स्त्री समस्याओं को केन्द्र बनाकर बोलती है तो स्त्रियों पर लिखी जानेवाली स्त्री की सामान्य विशेषताओं पर आवाज़ प्रस्तुत करती है। सामाजिक जागरण के अध्ययन में दोनों तरह की कविताओं का महत्व है। डॉ. अरविन्दाक्षन के मतानुसार कात्यायनी में स्त्री स्वर ज़्यादा है, वह स्त्री पक्ष में सहानुभूतिपूर्वक रचनाएँ नहीं करती है।

''कात्यायनी की कविताएँ स्त्री पक्ष की कविताएँ नहीं, बल्कि स्त्री कविताएँ हैं। उनकी तमाम कविताओं का व्याकरण स्त्री द्वारा रचित है। भाषा उन्होंने स्त्री की कोख से ली है। इसलिए उनकी कविता की भाषा में स्त्री की गंध है, जो साधारण पुरुष की वासना को भटकाने के लिए नहीं अपितु अपने में प्रफुल्लित होने के लिए है। स्त्री कविताएँ स्त्री पक्ष की कविताओं से इस अर्थ में भिन्न हैं कि वे स्त्री का निरीक्षण–भर नहीं करतीं। वे स्त्री के प्रति

---

1. कात्यायनी, जादू नहीं कविता, पृ. 55

सहानुभूतिवश रचित भी नहीं है। स्त्री कविताएँ उसके रक्त से जन्मी रचनाएँ हैं। इसलिए सन्दर्भ स्त्री द्वारा संरचित है।''[1]

स्त्री द्वारा रचित कविता का महत्व यह है कि तमाम आरोपों के आगे ये व्यापक स्वर हासिल करके अपने को स्वयं सिद्ध कर सकती हैं।

शहरीकरण, पर्यावरण नाश, पारिस्थितिक असंतुलन आदि की समस्याओं के साथ स्त्री को जोडकर समकालीन समय में चितन मनन किया जाता है। स्त्री तथा साहित्य की खासियतों की पृष्टि की जाती है। डॉ. रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में, ''स्त्री लेखन पर अनैतिकता का आरोपण दरअसल पुरुष निर्मित स्त्री छवि के बरक्स अपना वजूद पाती नई स्त्री छवि को उपदस्थ करने का नया राजनीतिक–सांस्कृतिक षड़यंत्र है। यह आरोपण इस झूठ को सच बना देना चाहता है कि लैंगिक भिन्नता के कारण, स्त्री पुरुष की दृष्टि में पाई जानेवाली भिन्नता, स्वाभाविक एवं प्राकृतिक है, किन्हीं सांस्कृतिक षड़यंत्रों और सामाजिक व्यवस्थाओं का परिणाम नहीं। यह आरोपण साहित्य परंपरा में पुरुष लेखकों द्वारा रचित स्त्री मानस की उन स्थितियों को न देखने का संस्कार की देता है जिनका स्त्री संस्करण एक नई स्त्री छवि को परिदृश्य में लाता है।''[2]

4.13. भारतीय स्त्रीत्व की स्थापना

इक्कीसवीं सदी भारतीय स्त्री की स्थापना की शती मानी जाती है। तमाम आक्रमणों के बावजूद, पिछले कई दशकों से स्त्रियों ने अपनी ताकत दिखाई है। मृदुला गर्ग ने भारतीय स्त्री की पिछले पच्चास वर्ष की इस यात्रा का वर्णन किया है।

---

1. डॉ. अरविन्दाक्षन, समकालीन कविता, पृ. 19
2. रोहिणी अग्रवाल, नागपाश में स्त्री (सं.) गीताश्री, पृ. 107

''ऐसा नहीं है कि इस छवि में, पिछले पचास वर्षों में कोई परिवर्तन नहीं आया। स्त्री अब, केवल पहलेवाली पतिव्रता गृहणी नहीं है। वह विचारवान है, नौकरी पेशा है, बाहर संसार की जानकारी रखनेवाली है, मंत्रणा और यंत्रणा दोनों देने की बुद्धि–कुबुद्धि रखती है। पुरुष से बहस करती है और विद्रोह भी। पर उसका कर्मक्षेत्र पुरुष से परिभाषित और सीमित है।''[1]

यह कहना मुनासिब है कि भारतीय स्त्री, अपनी रूढ़ियों से बिछुडकर पहचान बनाने को तुली है। कम से कम कला, साहित्य और कविता में उनका यह ऐलान मिलता है कि अब वह पुरानी नहीं है, उसके पास आगे जाने की हिम्मत एवं स्वतंत्र चेतस् है। यह सच है कि भारतीय समाजों में स्त्री मुक्ति आज भी सपना है, हज़ारों–लाखों स्त्रियाँ सतत परंपरागत मूल्यों से टकराती हैं। कविता इन स्त्रियों का पक्षधर रहती है और उन्हें वैचारिक चेतनामुक्त होने व टकराने की प्रेरणा देती है। स्त्री वैचारिकी का संस्पर्श इस संदर्भ में कविता की ऊर्जा है।

जीवन अस्तित्व की लडाई है
सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट
समर्थ ही जिएगा
के संदर्भ में
प्रकृति युद्धरत रहती है
युद्धरत रहेगी
नहीं तो उसे मिटाना होगा।[2]

---

1. मृदुला गर्ग, चूकते नहीं सवाल, पृ. 47
2. रमणिका गुप्ता, प्रकृति युद्धरत है, पृ. 51

कवयित्रियों का ठोस हस्ताक्षेप पूरे साहित्य के माहौल को जागृत रखने में सहायक है। यह महत्वपूर्ण बात है कि नव पीढी की कई कवयित्रियाँ, पूर्ववर्ती पीढ़ी की कविताओं से ऊर्जा और प्रेरणा पाकर हिंदी के काव्यजगत् में आ रही हैं, जो नई–नई बातों व विषयों के साथ भारतीय स्त्री की व्याख्या कर रही हैं और उसके बदलते चित्र और चरित्र को सकारात्मक स्वरूप दे रही हैं। उनका स्वप्न वरिष्ठ कवयित्री रमणिका गुप्ता ने यों व्यक्त किया है –

''धरती के वंशजकों
दे दे एक
धर्म मुक्त
तंत्र मुक्त
भय मुक्त
शोषण मुक्त
समाज का आकार
प्रभथ्यू का अथक धैर्य और जिजीविषा
इच्छा शक्ति नेपोलियन की।''[1]

कुल मिलाकर यह बता सकता है कि तमाम बंधनों व सीमाओं को तोड़कर समकालीन स्त्री सोचते व अपनी दुनिया के साथ समाज को भी सुधारने के लिए सोचती है और उचित समय संदर्भ पर अपने विचार को काव्य में उतार देती है। युवा पीढ़ी की कवयित्रियों के काव्य विषय चारों दिशाओं के सभी संकटों को समेटते हैं।

---

1. रमणिका गुप्ता, सोलहवीं सदी के प्रेतों का षडयंत्र, आदमी से आदमी तक, पृ. 160